नाटकदीप प्रकरण

(पंचदशी–विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित)

1. **परमात्माऽद्वयानन्द पूर्णः पूर्वं स्वमायया।**
स्वयमेव जगद्भूत्वा प्राविशज्जीवरूपतः।।

सृष्टि के पूर्व में अद्वय, आनंदस्वरूप पूर्ण परमात्मा ही थे। वे अपनी मायाशक्ति से स्वयं ही जगद्रूप होकर उसमें जीवरूपसे प्रवेश कर गये।

2. **विष्ण्वाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवता भवेत्।**
मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितो भजति मर्त्यताम्।।

विष्णु आदि श्रेष्ठ शरीरों में प्रवेश हुए परमात्मा, देवता और मनुष्य आदि निकृष्ट शरीरों में प्रविष्ट परमात्मा मनुष्यत्व को प्राप्त होते है।

3. **अनेक जन्मभजनात् स्वविचारं चिकीर्षति।**
विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम्।

अनेको जन्मों के सत्कर्म तथा भजन के द्वारा मनुष्य अपने बारेमें विचार करने की इच्छा से युक्त होता है। और अपने स्वरूप का विचार कर मायारूप आवरणका नाश होने पर स्वयं ही अवशिष्ट रहता है।

4. **अद्वयानन्दरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता।**
बन्धः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिर्मुक्तिरितीर्यते।।

अद्वयआनंद स्वरूप आत्मा का सद्वय और दुःखित्व को बंधन कहा है, और स्वरूप में अवस्थिति को ही शास्त्रों में मुक्ति कहा है।

5. **अविचारकृतो बन्धो विचारेण निवर्तते।**
तस्माज्जीव परात्मानौ सर्वदैव विचारयेत्।।

अविचारकी वजह से ही बंधन होता है और वह विचार सेही निवृत्त होता है, अतः जीव और परमात्मा के स्वरूप का सतत विचार करना चाहिए।

6. **अहमित्यभिमन्ता यः कर्ताऽसौ तस्य साधनम्।**
मनस्तस्य क्रिये अन्तर्बहिर्वृत्ती क्रमोत्थिते।।

जो देह आदि में मैं हूँ ऐसा अभिमान करनेवाला कर्ता है, उस कर्ता कासाधन मन है। मन से ही क्रमशः उत्पन्न अंदर के विषयों को विषय तथा बाहरी विषयों को विषय करनेवाली जो वृत्ति है, वह मन की क्रिया है।

7. **अन्तर्मुखाऽहमित्येषा वृत्तिः कर्तारमुल्लिखेत्।**
बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्य वस्त्विदमुल्लिखेत्।।

मैं हूं ऐसी अंतर्मुख वृत्ति कर्ता कही जाती है और यह हैं ऐसी बहिर्मुख वृत्ति देह आदि के बाहर के पदार्थो को विषयकृत करती है।

8. **इदमो ये विशेषाः स्युः गन्धरूपरसादयः।**
असांकर्येण ताञ्भिन्द्याद् घ्राणदीन्द्रियपंचकम्।।

जो गंधरूपरसादि भेद है उसको नासिका आदि पाँच ज्ञानेंद्रिया पृथक पृथक रूप से ग्रहण करती है।

9. **कर्तारं च क्रियां तद्वद्व्यावृत्तविषयानपि।**
स्फोरयेदेकयत्नेन योऽसौ साक्ष्यत्र चिद्वपुः।।

अहंकाररूप कर्ता को मनकी वृत्तिरूप क्रिया को और नासिका आदि इंद्रियों के द्वारा ग्राह्य गंध आदि विषयों को भी चेतनरूप आत्मा एक ही साथ प्रकाशीत करती हैं।

10\. **ईक्षे श्रृणोमि जिघ्रामि स्वादयामि स्पृशाम्यहम्।**
इति भासयते सर्वं नृत्यशालास्थदीपवत्।।

मैं देख रहा हूँ, सुन रहा हूँ, सुँघ रहा हूँ, खा रहा हूँ, स्पर्श कर रहा हूँ इस तरह से नृत्यशाला के दीपक की तरह वह सबको अविकारी रहकर साक्षी प्रकाशित करता है।।

11\. **नृत्यशालास्थितो दीपः प्रभुं सभ्यांश्च नर्तकीम्।**
दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते।।

नृत्यशाला में स्थित दीपक मालिक को और सभा में बैठे हुए सभ्यों को और नृत्य करने वाली को तारतम्य के बिना अर्थात् विकाररहित होकर समान भाव से सब को प्रकाशता है। और उन सब के न रहने पर भी स्वयं प्रकाशमान रहता है।

12\. **अहंकारं धियं साक्षी विषयानपि भासयेत्।**
अहंकाराद्यभावेऽपि स्वयं भात्येव पूर्ववत्।।

उसी प्रकार साक्षी भी पूर्वोक्त अहंकार रूप जीव को, बुद्धि को शब्द, स्पर्श आदि विषयों को भी एक ही साथ निर्विकाररूप रहकर भी प्रकाशता है और सुषुप्ति में अहंकार आदि के अभाव होने पर भी उसके साक्षीरूप से स्वयं पहले की तरह प्रकाशमान ही रहता है।।

13\. **निरन्तरं भासमानो कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः।**
तद्भासा भास्यमानेयं बुद्धिर्नृत्यत्यनेकधा।।

निर्विकार साक्षी स्वप्रकाश चैतन्यरूपसे सदा प्रकाशमान रहने पर यह बुद्धि उस साक्षीस्वरूप चैतन्य से प्रकाशित होती हुई अनेक प्रकार से नृत्य करती है।

14\. **अहंकारः प्रभुः सभ्या विषया नर्तकी मतिः।**
तालादिधारीण्यक्षाणि दीपः साक्ष्यवभासकः।।14।।

अहंकार प्रभु है, शब्दादि विषय सभ्य, बुद्धि नर्तकी, इन्द्रिया बाजे बजाने वाले तालधारी है और साक्षी सबका प्रकाशक दीपक के समान है।

15\. **स्वस्थानसंस्थितो दीपः सर्वतो भासयेद्यथा।**
स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरन्तः प्रकाशयेत्।।

दीपक जैसे गमनादि विकाररहित होकर अपने स्थान में स्थित हुआ ही समीपस्थ सब पदार्थो को प्रकाश करता है, उसी प्रकार कूटस्थ चैतन्यरूप साक्षी भी निर्विकाररूप से स्थिर होकर बाहर भीतर सबको प्रकाशता है।

16\. **बहिरन्तर्विभागोऽयं देहापेक्षो न साक्षिणि।**
विषया बाह्यदेशस्था देहस्यान्तरहंकृतिः।।

यह बाहर और भीतर देश का विभाग शरीर की अपेक्षा से ही है। चैतन्यरूप साक्षी में यह बाह्यान्तर विभाग नही है, शब्द, स्पर्शादि विषय शरीर से बाहर देश में स्थित है और शरीर के भीतर अहंकार स्थित है।

17\. **अन्तःस्था धीः सहैवाक्षैर्बहिर्याति पुनः पुनः।**
भास्यबुद्धिस्थ चांचल्यं साक्षिण्यारोप्यते वृथा।।

देह के भीतर स्थित बुद्धि इन्द्रियों के साथ ही अर्थात् इन्द्रिय द्वारा बारंबार रूप आदि विषय ग्रहण के लिए बाहर जाती है। दृश्य बुद्धिकी चंचलता निर्विकार प्रकाशक साक्षी में व्यर्थ ही कल्पित होती है।

18\. **गृहान्तरगतः स्वल्पो गवाक्षादातपोऽचलः।**
तत्र हस्ते नर्त्यमाने नृत्यतीवातपो यथा।।

खिडकी के छिद्र में से घर के भीतर आई हुई थोडी सी धूप अचंचल ही होती है। परन्तु उस धूप में हाथ को हिलाने पर जैसे वह धूप नाचती हुई जैसी प्रतीत होती है, पर वास्तव में नही चलती।

19. निजस्थानस्थितः साक्षी बहिरन्तर्गमागमौ।
अकुर्वन् बुद्धिचांचल्यात्करोतीव तथा तथा।।

उसी प्रकार अपने ही स्थान में स्थित हुआ साक्षी बाहर, भीतर गमन, आगमन नहीं करता हुआ भी बुद्धि की चंचलता से गमनागमन करते हुए की तरहसे प्रतीत होता है, वस्तुतः गमनागमनरूप चंचलता साक्षी में हैनही।

20. न बाह्यो नान्तरः साक्षी बुद्धेर्देशौ हि तावुभौ।
बुद्ध्याद्यशेषसंशान्तौ यत्र भात्यस्ति तत्र सः।।

कूटस्थ चैतन्यरुप उदासीन दृष्टा न तो बाहर देश में स्थित है,न ही शरीर के अंदर स्थित कहा जा सकता है। क्योकि वे दोनों बाह्य और आन्तर देश बुद्धिके ही है। बुद्धि इन्द्रियां सब का उपराम हो जानेपर अर्थात् इनकी प्रतीति न रहने वह साक्षी जहा प्रतीत होता है वहीं है।

21. देशः कोऽपि न भासेत् यदि तर्ह्यस्त्वदेशभाक्।
सर्वदेशप्रक्लृप्त्यैव सर्वगत्वं न तु स्वतः।।21।।

अंतःकरणादि की उपरति होने पर कोई भी देश अगर नही भासता होवे तब किसी भी एक देश में नही रहने वाला वह साक्षी होगा। संपूर्ण देश के साथ संबंध होने के कारण ही अथवा सर्व देश की कल्पना होने से ही उसकी अपेक्षा करके साक्षी सर्वगत कहा जाता है। स्वभाव से तो अद्वितीय असंग होने के कारण साक्षी सर्वगत नही कहा जा सकता।

22. अन्तर्बहिर्वा सर्वं वा यं देशं परिकल्पयेत्।
बुद्धिस्तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत्।।

बुद्धि अन्तर्देश, अथवा बाह्य देश, अथवा सर्व देश जिस देश की भी कल्पना करती है। साक्षी उसी देश में स्थित समझा जाता है। उसी प्रकार दृश्य वस्तुओं में भी समझ लेना चाहिए।

23. यद्यद्रूपादि कल्प्येत बुद्ध्या तत्तत्प्रकाशयन्।
तस्य तस्य भवेत्साक्षी स्वतो वाग्बुद्ध्यगोचरः।।

बुद्धिके द्वारा जिस जिस रूपादि दृश्य वस्तु की कल्पना होती है, उस उस रूपादिक दृश्यवस्तुका प्रकाश करता हुआ वह चैतन्य उस उस रूपादि का साक्षी होता है। स्वभावसे ही वह चैतन्य वाणी और बुद्धिका विषय नही है।

24. कथं तादृङ्मया ग्राह्य इति चेन्मैव गृह्यताम्।
सर्वग्रहोपसंशान्तौ स्वयमेवावशिष्यते।।

वाणी और बुद्धि का अगोचर वह आत्मा मुझ से कैसे ज्ञात होगा, ऐसी यदि आशंका करते हो तो उत्तर यह है की मत ज्ञात होवे तथापि संपूर्ण प्रतीति शांत हो जानेपर, अपना स्वरूप आत्मा ही सत्यरुप से शेष रह जाता है।

25. न तत्र मानापेक्षास्ति स्वप्रकाशस्वरूपतः।
तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेच्छ्रुतिं पठ गुरोर्मुखात्।।

आत्मा स्वप्रकाश होनेसे आत्मा के अपरोक्षज्ञान के लिये प्रमाणों की अपेक्षा नही है। ऐसी प्रतीति की सिद्धि के लिये प्रमाण की अपेक्षा यदि कहोगे तो गुरु मुख से उपनिषद् पढो।।

26. यदि सर्वग्रहत्यागो अशक्यस्तर्हि धियं व्रज।
शरणं तदधीनोऽन्तर् बहि वैषोऽनुभूयताम्।।

अगर संपूर्ण द्वैत प्रतीति का त्याग नहीं बन सकता तब बुद्धि की शरण जाओ। बुद्धिके अधीन भीतर अथवा बाहर इस आत्मा से अभिन्न परमात्मा का अनुभव करो।